हरिद्रा
(संस्कृतिक शोध का अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम)
ISSN : 2582-9092

# भोज का व्याकरण एवं काव्यशास्त्रीय प्रदेय

डॉ. ज्योत्स्ना द्विवेदी

''न विद्यते असौ सकलेऽपि लोके
यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत।
स एव कात्स्न्र्येन गुणान्वितानां
बभूव नृणामुपमानभूतः।।

भारतीय ज्ञानसाधक नृपों में भोज अग्रगण्य हैं। भोज ने अनेक विषयों पर अनेक ग्रन्थ रचे हैं। विविध विद्वानों के विविध ग्रन्थों, टीकाओं, हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों तथा शिलालेखों से भोज के अनेक ग्रन्थों के अभिधान उपलब्ध होते हैं। जिनमें कई ग्रन्थ प्रकाशित हैं, परन्तु कई ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

1. **सरस्वतीकण्ठाभरण (व्याकरण)**
2. **प्राकृत व्याकरण**

भोज का सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी के आदर्श पर अष्टाध्यायी है। पाणिनि के पश्चात् हुए परिवर्तन तथा संशोधनों को समेटता यह ग्रन्थ पाणिनि की अपेक्षा अधिक सुगम तथा पूर्ण है ऐसा कई इतिहास समालोचकों को मानना हैं। प्राकृत व्याकरण के विषय में विज्ञ मानते हैं कि यह कच्छ के राजा भोजदेव का ग्रन्थ है। इसी का अपरनाम भोजव्याकरण भी है। चन्द्रप्रभुसूरि के ग्रन्थ 'प्रभावकचरितम्' के श्लोक 4/75 में इसका उल्लेख मिलता है।

''भोजव्याकरणं ह्येतत् शब्दशास्त्रं प्रवर्त्तते।
असौ हि मालवाधीशो विद्वच्चक्रशिरोमणिः''।

आफ्रेक्ट महोदय ने अपने ''कैटेलागस कैटेलागोरम'' में भोज के तीन व्याकरण के ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

1. सरस्वती कण्ठाभरण
2. शब्दानुशासनम्
3. भर्त्तृहरिकारिका

भोज का वैय्याकारणिक पाण्डित्य अलंकारशास्त्रीय ग्रंथ सरस्वतीकण्ठाभरण (अलंकार) में स्वतः उद्भूत होता है। इस ग्रन्थ का मंगलाचरण लिखते हुये जिन ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य, की महत्ता को कवि ने वर्णित किया है उसकी मूल भावना काव्यशास्त्र में व्याकरणशास्त्र की अनिवार्यता का प्रतिपादन है। ध्वनिवाद तो वैय्याकरणों के स्फोटवाद का ही प्रभाव है। इसी प्रकार पदशास्त्र विषय अपरिहार्य होने से

ISSN : 2582-9092

पदों के घटक वर्णों तथा उनकी भी मूलभूत ध्वनियों का विशद वर्णन और वर्गीकरण ''चत्वारिवाक्परिमिता पदानि'' के अनुसार ही है। (''ध्वनिर्वर्णाः पदंवाक्यं इति पदचतुष्टयम'')

**ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यत्यास्पदचतुष्टयम्।**
**यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे।।**[1]
**ध्वनि–स्फोटात्माध्वनिः (महाभाष्यपस्पशाह्निक)**
**कौश्चित् व्यक्तय एवास्या ध्वनित्वेन प्रकल्पिताः।**[2]

**पदम्** – सुप्तिङन्तं पदम्[3]

**वाक्यम्** – सुप्तिङन्तंचयरूपवाक्यम्[4]

उपर्युक्त श्लोक में जहाँ व्याकरण के दर्शन पक्ष का दिग्दर्शन होता है वहीं व्याकरण के अन्य नियमगत विश्लेषण भी द्रष्टव्य हैं, यथा हेतु अलंकार का निरूपण करते हुये उसके प्रथम विभाग 'कारक' में ''यः प्रवृत्ति निवृत्तिं च.–– तेन कारकस्य षट्प्रकाराः। इसकी तुलना–महाभाष्य 1.1.5 के उद्योत् टीका में – ''कारकं–शक्तिमत् द्रव्यं.'' तथा सिद्धान्त कौमुदी' के ''कारके'' सूत्र से की जा सकती है त्र ''तेन कारकस्य षट् प्रकाराः'' इत्यादि है।

व्याकरण सम्प्रदायानुसार कर्ता तीन प्रकार का होता है :–

1. शुद्धकर्ता–मया हरिः सेव्यते
2. प्रयोजकहेतुरूपकर्त्ता – (तत्प्रयोजको हेतुश्च)
3. कर्मकर्त्ता–(गतिबुद्धि.) गमयति कृष्णं गोकुलम्

उसी प्रकार कविभोज– ''तस्य राज्ञः''[5] में ''हेतौ''[6] सूत्र के अनुसार कर्त्ता को प्रधान कारण के रूप में उपस्थित किया है। एक अन्य उदाहरण देखे–

**''हंसो ध्वाङ्क्षविरावी स्याद् उष्ट्कोशी च कोकिलः।**[7]

यह श्लोक पदोपमा विषय में उदाहृत है। यहाँ 'विरावी', 'क्रोशी' तथा 'नादी' पदों का णिनि प्रत्ययान्त प्रयोग है। प्रायः यह प्रत्यय तच्छील (स्वभाव) अर्थ में होता है – कौवे, ऊँट तथा खर के सदृश आवाज करना हँस, कोकिल, मयूर का स्वभाव नहीं, किन्तु यहाँ 'णिनि' प्रत्यय का प्रयोग कवि ने विशिष्ट दशा में किया है। यह प्रयोग पाणिनि के 'कर्त्तरि उपमाने' (अष्टा0 3/2/79) सूत्र के नियमानुसार हुआ है अर्थात् कर्त्ता के लिये णिनि का प्रयोग हुआ है। अतः प्रत्यय के द्वारा उपमेय अभिलक्षित है तो श्लोक का अर्थ होगा – हे वाग्मिनि। तुम्हारे बोल देने से (या नायिका के वाणी की तुलना में भी) हँस की ध्वनि कौवे जैसी कोकिल की उष्ट्रध्वनि के सदृश तथा मयूर की गधे के सदृश लगती है।

ISSN : 2582-9092

यहाँ हम उन कुछ एवं प्रमुख शब्दों का दिग्दर्शन करा रहे हैं। जिनकी व्याख्या या सही संदर्भ लगाना व्याकरण ज्ञान के बिना असम्भव है :–

| **सरस्वती कण्ठाभरण** | **पाणिनीय सूत्र / अर्थ** |
|---|---|
| ''दिवं पत्काषिणो यान्ति0 1 / 124 | ''हिमकाषिहतिषु च'' त्र पादयपि कषन्तः (अष्टा0 6 / 3 / 53) |
| ''पूर्णेन्दु कल्पवदना0'' 4 / 6 | ''ईष्द समाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'' (अष्टा0 5 / 3 / 67)8 |
| ''सूर्यीयति0'' 4 / 7 | ''उपमानादाचारेः'' से क्यच् (अष्टा0 3 / 1 / 10) |
| ''अतिमृतायते''0 4 / 7 | ''कर्त्तुः क्यङ्. सलोपश्च'' से क्यङ्.(अष्टा0 3 / 1 / 11) |
| ''नरकीयति'' 0 4 / 7 | ''अधिकरणाच्च'' वार्त्तिक से नरक पद से क्यच् प्रत्यय। |
| ''एक एकहि जलचन्द्रवत्'' 4 / 8। | ''तेन–तुल्यं–क्रिया–चेद्–वतिः0 |

यहाँ वति प्रत्यय का प्रयोग वाचक पद इव के अर्थ में किया गया है। यह प्रयोग पाणिनि के सूत्र ''तेन तुल्य0'' के अनुसार किया गया है।

| | |
|---|---|
| चक्षुषी इमे0 4 / 10 | इदूदेद्द्विवचनं0 (अष्टा0 1.1.11) |
| ''उत्पले इनेति0 4 / 11 | ––''–– |
| ''कोमलपाटलौ0 4 / 12 | सरूपाणा0 (अष्टा0 11 / 2 / 64) |

यहाँ पल्लव तथा अधर की कोमलता और पाटलता भिन्न भिन्न है किन्तु ''सरूपाणामेक0'' नियम के अनुसार एक ही पद अवशिष्ट है।

| | |
|---|---|
| ''पाणिपद्मानि त्वत्पादनखचन्द्राणां0''– ''उपमितं व्याघ्रादिः 4 / 27 | सामान्याप्रायोगे 9 (अष्टा0 02 / 1 / 56) |
| ''जलाभिलायीः'' (4 / 49) | ''आतोयुक्0'' (अष्टा0 7 / 3 / 33) |
| | ('ला दाने' तच्छीलिके णिनि 'आतो युक्0 इति युकि जलपानशील इत्यर्थः) |
| विजयेन्ते (4 / 65) | ''विपराभ्यां जेः'' (अष्टा0 1 / 3 / 19) |

''पल्लवितमिव करपल्लवाभ्यां'' (4 / 90) यहाँ कर, नयन पर पल्लवत्व, पुष्पत्व आदि का आरोप किया गया है। कर तथा नयन आदि प्रफुल्लन तथा फलन क्रियाओं के वस्तुतः कर्त्ता है, किन्तु इन पदों के 'क्तप्रत्ययान्ते' होने से इनका कर्त्तृत्व अनुक्त है। इनकी यही अनुक्तता ''अनुपत्ति व्यापार हेतुत्वेन'' आदि पदों से व्यक्त है। ''अनुक्ते कर्त्तरि'' से अनुक्त होकर कर्त्ता तृतीया में हो जाता है।

| | |
|---|---|
| **''सुख पृच्छकः''0 4 / 116** | **क्रियासमभिहारे वुन् (अष्टा0)** |

ISSN : 2582-9092

शब्द हीनत्व दोषगुण के उदाहरण में कवि ने श्लोक लिखा है :–

**आक्षिपन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखच्छविम्।**
**कोशदण्डसमग्राणं किमेषां खलु दुष्करम्[10]''**

यहाँ पर 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' सूत्र के द्वारा 'कर्त्तृ कर्मणोः कृति' नामक षष्ठी विधायक सूत्र का बाध होने पर 'इनके लिये दुष्कर क्या है' इसमें अशुद्धि होने पर भी सम्बन्ध मात्र की उक्ति अपेक्षित होने से गुणता आ गयी है।

पणिनि के सूत्र 'कत्तृकर्मणोः कृति'[11] का अर्थ है कि पदों के संयोग में कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। उसी प्रकार ''न लोकाव्यय0[12]'' उसका बाधक सूत्र है जिसका अर्थ है कि कृत् प्रत्ययों में लकारों के स्थान पर होने वाले प्रत्ययों में अन्त में होने वाले, उ, उक, अव्यय निष्ठा (क्त् क्तवतु) खलर्थ तथा तृन् प्रत्ययान्त पदों से सम्बन्ध होने पर कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति न लगे। दुष् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से 'ईषद् दुःसुषु0[13]' से 'दुष्कर' पद बना। अतः सूत्र नियमानुसार सम्बद्ध पद में षष्ठी विभक्ति नहीं लगनी चाहिए किन्तु प्रस्तुत श्लोक में 'एषाम्' षष्ठ्यन्त है। यही नियम विरूद्ध अतः शब्द हीनत्व है।

''जुगुप्सत स्मैनमदुष्टभावं मैवं भवानक्षतसाधुन''[14] यहाँ पर 'मा स्म जुगुप्सत' कहना चाहिये क्योकि 'मा' निर्षेधार्थक प्रयोग होने पर 'माडिलुङ्'[15] से लुङ्लकार प्राप्त था, किन्तु 'स्मोत्तरे लङ् च[16]' के अनुसार यदि 'स्म' बाद में आये तो उसके पूर्व 'मा' का प्रयोग होने पर 'लङ् होना चाहिए। अर्थात् मा के बाद 'स्म' होने चाहिए 'जुगुप्तसत' के बाद नहीं किन्तु ''व्यत्यये अपि इच्छन्ति केचित्'' परिभाषा से यहाँ समाधान करके व्यक्तिक्रम दोष से कवि मुक्त है।

**श्रियः प्रदुग्धे विपदो रूणद्धि यशांसि सूते मलिनं प्रमाष्टि।**
**संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धि किल कामधेनुः।।**

उपर्युक्त उदाहरण में प्रदुग्धे आदि क्रियाओं का प्रयोग एक विशेष अभिप्राय से हुआ है। 'प्रदुग्धे' 'सूते' आत्मनेपद में तथा 'रूणद्धि' 'प्रमाष्टि' परस्मैपद तथा आत्मनेपद में होते है। यहाँ इनका अपने विपरीत पदों पर प्रयोग प्रयोजन विशेष से हुआ है। 'दुहि' धातु का प्रयोग ''दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोः[17]'' वार्त्तिक से कर्मकर्त्तृ प्रक्रिया के अंतर्गत सुकरता का बोध कराने के लिये हुआ है। यदि यह विशिष्ट प्रयोग न होता तो सुकरता का अर्थ यहाँ प्रकट नहीं होता। इसी प्रकार 'रून्ध्' धातु का 'श्नम्[18]' आदि से परस्मैपदीय रूप सिद्ध किया गया है। इसका परस्मैपदीय प्रयोग होने पर ही दूसरे को विपत्ति के अवरोध का फल मिल सकता है। इसी प्रकार 'श्रयः' 'विपदः' आदि पदों के अर्थविशेष की सिद्धि के लिये अपेक्षित विकार, कवि व्याकरण ज्ञान द्वारा ही सिद्ध कर पा रहा है।

**जातश्चायं मुखेनदुस्ते भ्रकुटिप्रणयी पुरः।**
**गतः च वसुदेवस्य कुलं नामावशेषताम्।।**

ISSN : 2582-9092

यहाँ वाक्यों का संयोग करने वाला अव्यय 'च' पठित होने से 'गतं' में क्त प्रत्यय भविष्यत अर्थ में ''आशंसायां भूतवच्च''19 सूत्र के अनुसार है। वाक्यार्थ युक्ति के लिये कवि ने जिस उदाहरण को दिया है उसमें भी व्याकरण ज्ञान का रहस्य छिपा है –

**दूतीं संदिश संदिशेति बहुशः संदिश्य सास्ते तथा**
**तल्पे कल्पमयीव निघृण तथा नान्तं निशा गच्छति[20]।**
**तिष्ठ द्वारि भवाबणे व्रज बहिः सद्मेति वर्त्मेक्षते,**
**शालामञ्च तमबमञ्च वलभीमञ्चति वेश्माञ्चति।।**

यहाँ प्रथम पंक्ति में स्पष्ट है कि विभिन्न धातुओं का एकत्र ही संकलन है, यह पाणिनि मुनि के व्याकरण के नियमों ''समुच्चयेऽन्यतरस्याम्[21]'' तथा ''समुच्चये सामान्य वचनस्य[22]'' के अनुसार लट् अर्थ में लोट् का तथा अन्त में सामान्यार्थक धातु का यथाविधि प्रयोग हुआ है। द्वितीय चरण में 'अञ्च' क्रिया का अनेक बार किया गया प्रयोग अभ्यास को स्पष्ट कर रहा है। तृतीय चरण में द्विरूक्ति होने से समभिहार के कारण ''क्रिया समभिहारे लोट् लोट हिस्वौ वा च तध्वमोः[23]'' तथा ''यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्[24] सूत्रों के अनुसार है।

एक अन्य उदाहरण में स्वरानुसारी अर्थ परिवर्तन द्रष्टव्य है –

- सुभ्रूस्त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं व्यक्ता कथा योषितां,
- दूरादेव मयोज्झिताः सुरभयः स्रग्गन्धधूपादयः।
- रागं रागिणि मुञ्च मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना,
- सत्यं त्वद्विरहात् भवन्ति दयिते सर्वा ममान्धा दिशः[25]

व्याकरण तथा शिक्षा ग्रन्थों में स्वरों का निरूपण किया गया है। स्वर ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत तीन प्रकार के होते हैं। पाणिनि के ''ऊकालोऽज्झस्वदीर्घ0'' के अनुसार है। प्रस्तुत उदाहरण के तृतीय चरण में 'दृष्टे' पद सप्तमी का एकवचन पुंल्लिग का रूप है। किन्तु यदि इसी के उक्त स्वर को प्लुत मान लें तो यह सम्बोधन स्त्रीलिंग एकवचन का रूप 'दृष्टे' पद ग्रहण कर लेगा। दीर्घ होने पर यही पद 'मयि' का विशेषण था, किन्तु दूसरी दशा में यह स्वयं विशेष्य हो जायेगा और इसका विशेषण 'सुभ्रू' आदि पद हो जायेगे। अतः पहली अवस्था में जो पूरा अर्थ कुपित कान्ता को प्रसन्न करने से सम्बद्ध था, वह दूसरी स्थिति में दृष्टि, तुम क्रुद्ध हो यह जानकर इत्यादि।

कवि भोज के द्वारा उक्त चित्रकाव्य की चर्चा और उसके क्लिष्टत्वादि की विवेचना विद्वत् परिषद में सर्वदा होती रही है। भोज ने 'दोषगुण' प्रकरण में स्पष्ट कर दिया है कि अविद्वान् अज्ञ, स्त्रियों तथा बालकों के लिये प्रसादपूर्ण काव्य रचा जाता है, किन्तु श्रोताओं या अध्येताओं के विद्वान् होने पर

ISSN : 2582-9092

'अप्रसन्नता' दोष नहीं है। इसी प्रकार 'चित्र' में वैय्याकारणिक जटिलत्व का आभास मात्र मानना चाहिए। स्पष्ट है कि चित्रकाव्य का दुष्करत्व अज्ञों के लिये है विशेषज्ञों के लिये यह सरस ही है। व्याकरण तथा इतिवृत्तों का ज्ञान चित्ररसज्ञ के लिये आवश्यक है। इस विषय में रामरूप कवि का कथन सत्य ही है –

सर्वो धातुगणः क्रियादिविपुलो जिह्वाजिरे राजते।

**विश्वास्तद्धितवृत्तयः प्रमुदिताः क्रीडन्ति कण्ठस्थिताः।।**
**कृत्संज्ञा विलसन्ति प्रत्ययघटाः स्वान्तान्तरालम्बने।**
**येषां ते विभवो भवन्ति कृतिनो बन्धोत्कटे कानने।।**
**सत्यं वल्गितमस्ति तत्र भवतः अशक्तस्य कस्यापि ते।**
**द्राक्षामम्लतरां वदन्ति कृपणाः श्रान्ताः परास्तोद्यमाः।।**
**शाब्देब्रह्मणि साधिकारवचसां क्लिष्टक्रमाभ्यासिनाम्।**
**बन्धाली विजरीहरीति सुभगा विद्येश्वराणां मुदे।।**

अवश्य ही भोजराज इस व्याकरण और काव्यशास्त्र रूपी प्रयाग के सहिष्णु गोताखोर हैं। इस प्रकार के अनेकशः उदाहरण आपके काव्य में भरे पड़े हैं जिसकी गवेषणा से विद्वत्परिषद् सामाजिकों का लाभ करा सकें।

## संदर्भ –

1. (सरस्वती 0 1 / 1)
2. (वाक्य0। आगमा 73 तथा वैय्याकरणभूषणसार। स्फोट 072।)
3. (अष्टा01, 4, 14)
4. (वैय्या0, वाक्यस्फोट निरूपण)
5. (सरस्वती 3 / 20)
6. (अष्टा. 2 / 3 / 22)
7. (सरस्वती 4 / 5)
8. विद्वत्कल्पः का अर्थ है जो विद्वान् से बस थोड़ा सा कम हो।
9. यहाँ ''उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे'' सूत्र के अनुसार समास करने पर 'कमल' के सदृश कमल इस अभेदभाव का उपचारतः ग्रहण होने से सदृशता उत्पन्न होने के कारण हाथों तथा नखों का कमल तथा चन्द्रमा के साथ कथन होने से तथा सामान्य वाचक इव आदि शब्दों का प्रयोग न होने से उत्पन्न का अर्थ तिरस्कृत हो गया है।
10. सरस्वती0 1 / 111।

ISSN : 2582-9092

11. अष्टा0 2 / 3 / 65 ।
12. अष्टा0 2 / 6 / 69 ।
13. अष्टा0 3 / 3 / 126 ।
14. सरस्वती कण्ठाभरण 1 / 57
15. अष्टा0 3 / 3 / 75 ।
16. अष्टा0 3 / 3 / 176 ।
17. सूत्रवार्त्तिक 3 / 1 / 87 ।
18. 'रूधादिभ्यः श्नम्' अष्टा0 3 / 1 / 87 तथा 'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ' अष्टा 3 / 1 / 89 ।
19. अष्टा0 3 / 1 / 132 ।
20. सरस्वती0 2 / 56 ।
21. अष्टा0 3 / 4 / 3 ।
22. अष्टा0 3 / 4 / 5 ।
23. अष्टा0 3 / 4 / 2 ।
24. अष्टा0 3 / 4 / 4 ।
25. सरस्वती कण्ठा0 1 / 129, 156 ।

**सहा. प्राध्यापक (संस्कृत)**
शा.श.के. स्नातकोत्तर महा.